rothers.com, for detailed information on physiology books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on physiology book

क्रिया शारीर
(शरीर क्रिया विज्ञान)
Human Physiology

आयुर्वेदाचार्य (बी.ए.एम.एस.) नवीन पाठ्यक्रमानुसार



लेखक
आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा

2 तीय संस्करण

JAYPEE

विषय सूची

1.	विषय प्रवेशणीय	1
2.	शरीर शारीर वर्णन	23
3.	दोष विज्ञानीय (शारीर दोषों का विस्तृत ज्ञान)	36
4.	आहार पाक विज्ञानीय	87
5.	धातु उत्पत्ति एवं रसधातु विज्ञानीय	128
6.	रक्तधातु वर्णन	142
7.	माँसधातु वर्णन	157
8.	मेदोधातु वर्णन	164
9.	अस्थि धातु वर्णन	167
10.	मज्जाधातु वर्णन	177
11.	शुक्रधातु वर्णन	182
12.	ओज वर्णन	187
13.	उपधातु विज्ञानीय	194
14.	मल विज्ञानीय	205
15.	इन्द्रिय विज्ञानीय	218
16.	मन, आत्मा एवं निद्रा विज्ञानीय	226
17.	नाड़ी विज्ञान एवं षटचक्र निरूपण	249
18.	ग्रन्थि शारीर विज्ञानीय	265
19.	प्रजनन संस्थान परिचय	271
20.	Homeostasis	278
21.	Resting Membrane Potential	280
22.	Respiratory System	282
23.	Physiology of Gastrointestinal System	286
24.	Haemopoetic System	290
25.	Immunity	295
26.	Muscle Physiology	297

27.	Physiology of Cardiovascular System	300
28.	Adipose Tissue	305
29.	Integumentary System (Skin, Sweat Glands and Sebaceous Glands)	307
30.	Physiology of Excretory System	309
31.	Endocrine System	313
32.	General Introduction of Nervous Systems	315
	विषय की अकारादि सूची	322

दोष विज्ञानीय
(शारीर दोषों का विस्तृत ज्ञान)

3 अध्याय

यद्यपि दोषों का सामान्य वर्णन प्रथम अध्याय में किया गया है तथापि शरीर क्रिया ही नहीं सम्पूर्ण चिकित्सा में दोषों की विशेष उपादान के रूप में महत्ता को देखते हुए यहाँ उनका यथावश्यक विस्तृत कर रहे हैं :-

दोष भेदः-शरीर में दोष दो प्रकार के होते हैं 1. शारीरिक, 2. मानसिक।

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुदिष्टो रजश्च तम एव च॥ (च०सू० १)

अर्थात् वात पित्त एवं कफ ये तीन शारिरिक दोष हैं तथा रज एवं तम दो मानस दोष हैं।

संसार के समस्त दृष्यमान पदार्थ पंचमहाभूतों से बने हैं। अतः वात, पित्त एवं कफ का निर्माण भी पंचमहाभूतों से हुआ हैं। इतना ही नहीं जीवित शरीर को गति देने में ये तीनों दोष पंचमहाभूतों का प्रतिनिधित्व करते हुए उसी प्रकार निरन्तर कार्य करते रहते हैं जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत का संचालन चन्द्र, सूर्य एवं वायु द्वारा किया जा रहा है। अर्थात् शरीर में गति, पोषण एवं नियन्त्रण स्वस्थ रहते हुए दोष सदैव करते रहतेहैं।

विसर्गादान विक्षेपैः सोम सूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥ (सु०सू० २१/८)

शरीर में विसर्ग का (पोषणका) कर्म कफ करता है, आदान कर्म (उष्मा का कार्य) पित्त का है तथा विक्षेप अर्थात् गति सम्बन्धी कार्य वायु का है।

जब ये तीनों दोष समावस्था में रहते हैं तब शरीर को धारण करने से धातु रूप है, जब प्रकुपित होकर शरीर को दूषित करते हैं (प्राकृत क्रिया में बाधक होते हैं) तब इसे दोष कहा जाता है। इन्ही विकृतियों से शरीर को जब मलिन करते हैं तब मल रूप होते हैं। इन तीनों संज्ञाओं को प्रकट करने हेतु शास्त्र में कहा गया हैं:-

शरीर दूषणाद्दोषा धातवो देह धारणात्।
वात पित्त कफा ज्ञेया मलिनी करणान्मलाः॥ (शा० संहिता)

दोषों की निरुक्ति

वात निरुक्तिः-वा गति गन्धनयो से वात दोष की निरुक्ति बताई गई हैं। गति कर्म कराने वाले पदार्थ को वायु कहते हैं, यद्यपि गन्ध पृथ्वी का गुण है तथापि शास्त्रकारों के अनुसार गन्ध वायु का उपलक्षण है। सुगन्ध या दुर्गन्ध वायु द्वारा ही प्रसारित होती है। गति से ज्ञान, गमन एवं प्राप्ति तीन अर्थ लिये जाते हैं। अतः शरीर की समस्त चेष्टाएँ या गति वात दोष का ही प्रधान कर्म एवं लक्षण है। चरक ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है:-

JAYPEE BROTHERS

सर्वाहि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः।
तेनैव रोगा जायन्ते तेन चैवोपरुध्यते॥ (च०सू०१७/११८)

यही वात चेष्टा कराने वाला एवं प्राणियों का प्राण बताया गया है। इसी के प्रकोप से दोषों में विकार उत्पन्न होने से रोग होते हैं।

पित्त निरुक्तिः-तप संतापे धातु से पित्त की निरुक्ति की गई है। सन्ताप देने वाले, अग्नि कर्म स्वरूप पाक क्रिया करने वाले पदार्थ को पित्त कहते हैं।

श्लेष्मा निरुक्तिः-श्लिष आलिंगने धातु से श्लेष्मा की निरुक्ति बताई गई है। श्लिष आलिंगन से जोड़ना, मिलाना, चिपकाना, गीला करना आदि अर्थ लिया जाता है। ये समस्त क्रिया करने वाला दोष श्लेष्मा हैं।

कफ निरुक्तिः-केन जलेन फलति इति कफः-जल से जिसकी उत्पत्ति हो उसे कफ कहते हैं। इस श्लेष्मा में रहने वाला सोम ही सम एवं विषम अवस्था में होने पर शुभाशुभ कर्म कराता है।

वात दोष स्वरूप

शरीर में गति परक जितने कार्य हैं। वे वायु के हैं अतः शरीर में होने वाली श्वास क्रिया, रक्त परिभ्रमण एवं आहार पाक का क्रम वायु के विभिन्न भेदों द्वारा होता है। चरक में वायु को अमूर्त एवं सुश्रुत में अव्यक्त स्वरूप बताया है।

शरीर की चयापचय क्रिया, दोष, धातु, मल निर्माण पित्त के द्वारा होता है। अन्न पाक क्रिया एवं निर्माण रूप पित्त का स्वरूप होता है। यद्यपि पित्त एवं कफ भी अव्यक्त है किन्तु उनके कार्यों का फल व्यक्त होता है किन्तु वात का ज्ञान लक्षणों द्वारा जाना जाता है।

शरीर के अवयवों को जोड़ना एवं एक दूसरे से अपनी क्लिन्नता से रगड़ने से बचाना, गीला करना कफ स्वरूप कार्य है। अतः इनके गुण एवं कर्मों से स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

वायु के गुण

रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीत गुणै द्रव्यैर्मारूतः संप्रशाम्यति॥ (च०सू०१/५९)
अव्यक्तोव्यक्त कर्माच रुक्ष शीतो लघुः खरः।
तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजो बहुल एव च॥ (सुश्रुत नि० १७/८)

वायु में क्रमशः रुक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद एवं खर गुण होते हैं। ये प्रथम से अन्तिम गुण तक क्रमशः हीन एवं अन्त से प्रथम तक क्रमशः अधिक बलवान होते हैं। इनकी व्यक्तता वात के कर्मों से होती है। यह रजो गुण प्रधान है। इसके भौतिक गुण शब्द एवं स्पर्श है। इसमे योगवाह एवं आशुकारिता अचिन्त्य शक्ति होती है।

उत्साहोच्छ्वास निःश्वासचेष्टाधातुगतिः समा।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माविकारजम्॥(च०सू० १८/४९)

वात के सामान्य कर्मः-वात के सामान्य दो प्रकार के कर्म होते हैं:- 1. प्राकृत एवं 2. वैकृतिक-इनमें उत्साह, उच्छ्वास, निःश्वास (श्वास क्रिया), समस्त चेष्टाएँ, धातुओं को सम्यक् गति देना आदि समस्त सम वात या शुद्ध वात से कर्म हैं। प्राकृत वात के कर्मों का चरक

JAYPEE BROTHERS

सू०अ० 12 में विस्तृत रूप से वर्णन किया है–वात को तन्त्र यन्त्रधर अर्थात् समस्त नाड़ी तन्त्र का प्रवर्तक, मन का नियंता एवं प्रणेता, इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में प्रेरित करने वाला, इन्द्रिय विषयों को वहन करने वाला धातुओं को नियत करने वाला, वाणी का प्रवर्तक, वायु ही शब्द एवं स्पर्श की प्रकृति है। हर्ष एवं उत्साह देने वाला, अग्नि कर्म का प्रेरक, मलों को शरीर से बाहर निकालने वाला, स्रोतो भेदक, आयु एवं बल प्रदान करने वाला तथा शरीर की स्थिति बनाये रखने का मूल कारण है यह जीवनीय शक्ति है। समस्त दोष एवं धातु पंगु हैं। वायु के द्वारा ही गति करने में समर्थ होते हैं। यह जहाँ ले जाती है वही जाते हैं।

पितं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥ (शा०पू०५/२५)

वायु का स्थान

पक्वाशयः कटि सक्थिश्रोत्रास्थिस्पर्शनेन्द्रियम्।
स्थानं वातस्य, तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः॥(वा०सू०१२)

पक्वाशय, कटि, सक्थि, कर्ण, अस्थि स्पर्शनेन्द्रिय (समस्त शरीर की त्वचा) ये सभी वात के स्थान हैं तथापि पक्वाशय वात का विशेष स्थान बताया गया है। सम्पूर्ण शरीर में रहते हुए भी ये वात के प्रमुख स्थान बताये गये हैं। वात के विभिन्न भेदों के भी अपने अपने विशेष स्थान बताये गये हैं।

वायु के भेद

प्राणोदानसमानाख्यव्यानापानैः स पञ्चधा।
देहं तन्वयते सम्यक् स्थानेष्वव्याहृतश्चरन्॥ (च०चि०२८/४)

वायु के पांच भेद स्वास्थ्य कार्य एवं चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद में बताये गये हैं:–1. प्राण, 2. उदान, 3. समान, 4. व्यान, 5. अपान। ये पांचो भेद अपने अपने स्थान पर रहते हुए अपने अपने कार्यों को बिना बाधा से सम्पन्न करते हैं।

जब ये पांचों भेद सम अवस्था में रहते हैं तो शरीर को स्वस्थ रखते हैं। जब वायु के कर्म में विकृति आती है अथवा अपने स्थान को छोड़कर विमार्ग गामी हो जाते हैं तब स्वाभाविक कर्मों की विकृति हो जाती है।

1. प्राणवायु

प्राण धारण करने वाला होने से इसे प्राण वायु कहा जाता है। सुश्रुत ने अग्नि सोम सत्वादि जिन 12 तत्वों को प्राण कहा है उनमें वायु भी एक तत्व है।

स्थानं प्राणस्य शीर्षोरः कण्ठ जिह्वास्य नासिकाः (च०चि०२८)

स्थानः–शिर, जिह्वा, कान, वक्ष, मुख, नासा आदि प्राण वायु के स्थान हैं। वाग्भट के अनुसार मस्तिष्क में रहते हुए कण्ठ एवं उरः प्रदेश में विचरता है। **''प्राणोऽत्र मूर्धगः। उरः कण्ठचरो बुद्धिहृदयेन्द्रियचित्धृिक्।''** (अ०ह०सू० 12)

प्राण के कर्मः–थूकना, छींकना, उद्गार, श्वास–प्रश्वास तथा आहार आदि का निगलना प्राण वायु के सामान्य कर्म हैं।

JAYPEE BROTHERS

ष्ठीवनं क्षवथूद्गारनिःश्वासान्न प्रवेशकृत॥ (अ०हृ०सू० १२)

विशेष कर्म:-यह मन का नियामक तथा प्रेरक है। सभी इन्द्रियों को उनके विषयो में गति प्रदान कराता है। हर्ष एवं उत्साह कारक है। यह देह धारण करने वाला वायु मुख में गति करते हुए आहार निगलन क्रिया तथा प्राणों का अवलंबन करता है।

शार्ङ्गधर:-शार्ङ्गधर ने इसके स्थान एवं कर्म का वर्णन करके आधुनिक श्वास क्रिया को स्पष्ट किया है:-

वायुर्हि वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक्।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणाश्चाप्यावलंबते॥ सु०नि० १/१२

मुख में विचरण करने वाली प्राणवायु है। यह देह को धारण करती है। अन्न को शरीर के ग्रहणी आदि स्थानों पर पहुंचाती है तथा प्राणों का अवलम्बन करती है।

नाभिस्थः प्राण पवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्।
कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्॥
पीत्वा चाम्बर पीयूषं पुनरायाति वेगतः।
प्रीणयन्देहमखिलं जीवं च जठरानलम्॥ (शा०पू०५/४४/४५)

अर्थात् नाभि प्रदेश में रहने वाला प्राणवायु हृदय का स्पर्श करता हुआ विष्णुपद पीयूष (शुद्ध वायु) को आकाश से प्राप्त करने की इच्छा से कण्ठ मार्ग से बाहर आता है तथा शुद्ध वायु को ग्रहण करके पुनः वेग के साथ उसी मार्ग से अन्दर लौटकर हृत्कमल का स्पर्श करके समस्त शरीर, जीवात्मा तथा जठराग्नि को जीवन प्रदान करता है। (इसमें श्वास प्रश्वास प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन है)

विकृत कर्म:-इस प्राण वायु के विकृत होने पर हिक्का, कास एवं श्वास पथ के रोग प्रायः हो जाते हैं। **प्रायशः कुरूते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान्।** (सु०नि०)

2. उदान वायु

शरीर में ऊपर की ओर गति करने वाले वायु भेद का नाम उदान है।

उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरःकण्ठ एव च। (च०चि०२८)
उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।
तैन भाषित गीतादि विशेषोऽभि प्रवर्तते॥ (सु०नि० १/१४)

स्थान:-नाभि, वक्ष एवं कण्ठ उदान वायु के स्थान हैं।

उरः स्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत्।
वाक् प्रवृत्तिः प्रयत्नोर्जा बलवर्ण स्मृति क्रियः॥ (अ०हृ०सू०१२)

कर्म:-वाणी की प्रवृति (बोलना) भाषण, गायन, प्रयत्न, उत्साह, बल, वर्ण एवं स्मृति इसके कर्म हैं।

ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः। (सु०नि०१)

विकृत कर्म:-इसके विकृत होने पर विशेष रुप से ऊर्ध्व जत्रुगत अर्थात् शिर, कर्ण, दन्त, मुख, नेत्र, नासिक आदि के रोग होते हैं।

JAYPEE BROTHERS

उदान की स्वर प्रक्रिया:-बोलना, गीत, गायन, भाषण आदि कर्म उदान वायु भेद द्वारा होते हैं। कण्ठ नाड़ी की प्रेरणा से स्वरयन्त्र में लगे स्वर रज्जुओं में कम्पन्न तथा Larynx की Cartilage में होने वाली गति की सहायता से स्वर उत्पन्न होते हैं। नाड़ियों द्वारा इन पर नियन्त्रण रहता है। यह वायु फुफ्फुसों से निकलती हैं। उसमें सामान्य कम्पन्न एवं गति से केवल आवाज निकलती है। उपास्थि एवं Vocal Cord के समुचित नियन्त्रण से उत्पन्न नाद कहलाता है तथा जब यह होठ, जिह्वा, तालु, दांत, कण्ठ आदि के सम्पर्क से उच्चारित होते हैं तब वे अक्षरों के रूप में उत्पन्न होकर वाक्य बनाते हैं। इसका विशेष वर्णन आगे किया गया है।

3. व्यान वायु

सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहने वाला तथा दोष धातु एवं मलों को गति प्रदान करने वाला वायु व्यान कहलाता है।

देह वाप्नोति सर्वं तु व्यानः शीघ्रगतिर्नृणाम्। (च०चि० २८)

स्थानः-व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारीमहाजवः। (अ०ह०सू०/2) इसका प्रमुख स्थान हृदय हैं।

कर्मः-गति परक समस्त कर्म व्यान के हैं चलना, फिरना, लेना, देना आदि। उत्पेक्षण, अपक्षेपण, उन्मेष, निमेष एवं गति से पांच विशेष गति जन्य कर्म व्यान वायु के हैं। **गति प्रसारणाक्षेपनिमेषादि क्रियः सदा।** (च०चि० 28)

अर्थात् शरीर की समस्त क्रिया (चेष्टाएँ) इसी वायु के अधीन है-**'प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन प्रतिबद्धा शरीरिणाम्''** (वाग्भट 12/6)। अतः 1. शरीर को गतिशील करना, 2. स्वेद का निर्माण, 3. रक्त का संवहन तथा अपने वायु भेदों को बल प्रदान करना प्रमुख कार्य हैं।

विकृति कर्मः-इस की विकृति से सर्व शरीरगत रोग उत्पन्न होते हैं।

''कुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगतान्''॥

4. समान वायु

आम पक्वाशयचरः समानो वाह्निसंगतः। (सु०नि०)

आमाशय एवं पक्वाशय में विचरण करने वाला वायु समान वायु है। वाग्भट के अनुसार पांचकाग्नि के समीप रहता है तथा कोष्ठ में विचरण करने वाला ही समान वायु है।

स्वेददोषाम्बुवाहीति स्रोतांसि समधिष्ठितः।
आन्तेरानेश्चंपार्श्वस्थः समानोग्निबलप्रदः॥ (च०चि० २८)
समानोऽग्निः समीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वतः। (अ०ह्०)

स्थानः-समान वायु-स्वेदवह, दोषवह तथा अम्बुवह स्रोतों में आश्रित तथा अन्तराग्नि के पार्श्व में रहता है।

कर्मः-अग्नि को बल प्रदान करता है (प्रदीप्त करता है) एवं अन्न को पचाता है। परिपाचित आहार के सार एवं मल अंशों को पृथक् करता है।

अन्नंगृहणाति पचति विवेचयति मुच्यति॥ (अ०ह्०सू० १/९)

JAYPEE BROTHERS

विकृत कर्मः-समान वायु के विकृत होने पर गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार आदि रोग होते हैं। **''गुल्माग्निसादातिसार प्रभृतीन् कुरुते गदान्''।** (सु०नि०1/16)

5. अपान वायु

पक्वाधान या वृहदन्त्र में रहने वाला अपान वायु है।

वृषणौ बस्ति मेढ्रं च नाभ्युरु वंक्षणो गुदम्।
अपान स्थानमन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृन्ति सः॥ (च०चि०२८)

स्थानः-वृषण, श्रोणी, गुदा, मूत्राशय, मूत्रेन्द्रिय, वंक्षण, अन्त्रः एवं उरु प्रदेश में रहता है। **अपानोऽपानगः श्रोणिबस्ति मेढ्रोरुगोचरः। (अ०हृ०सू०१२)**

कर्मः-यह वायु, वीर्य, मूत्र, पुरीष, आर्तव तथा गर्भ को उचित समय पर बाहर निकालता है। **शुक्रार्तव शकृन्मूत्रगर्भ निष्क्रमणक्रियः (अ०हृ० १२/९)**

विकृत कर्मः-इसकी विकृति से गुदा तथा वस्ति में गम्भीर रोग उत्पन्न होते हैं। **कुद्धश्च कुरुते रोगान घोरान् बस्तिगुदाश्रयात्॥ (सु०नि०१/१९)**

पंचविध वात-गुण कर्म स्थान तालिका

	प्राण	उदान	व्यान	समान	अपान
स्थान	शिर, जिह्वा वक्ष, मुख नासा	नाभि वक्ष एवं कण्ठ प्रदेश	हृदय एवं सम्पूर्ण शरीर में संचरण	स्वेद, दोष एवं अम्बुवाही स्रोतों में आश्रित तथा अन्तराग्नि के पार्श्व में	श्रोणि, वृषण मूत्राशय, आन्त्र एवं उरु प्रदेश
गुण कर्म	थूकना, छींकना, उद्गार, आहार निगलना श्वास प्रश्वास हर्ष, उत्साह मनः, इन्द्रिय प्रेरक	वाणी, भाषण गायन, उत्साह, बल वर्ण, स्मृति	गति एवं चेष्टा सम्बन्धी पांचों कर्म	अग्निवर्धन अन्न पाचन एवं सार तथा किट्ट को पृथक करना	वीर्य, मल, मूत्र शुक्र, वायु आर्तव एवं गर्भ को समय पर बाहर करना

पंचविध पित्त-गुण कर्म स्थान तालिका

	रञ्जक	पाचक	आलोचक	साधक	भ्राजक
स्थान	यकृत, प्लीहा एवं आमाशय	पक्वाशय एवं आमाशय के मध्य	चक्षु, भ्रूमध्य श्रृंगाटक	हृदय	सम्पूर्ण शरीर की त्वचा
गुण कर्म	रस धातु को रंजित करना	आहार पाक करना पाचकांश के सार एवं मल को पृथक करना, अन्य पित्त भेदों को बल प्रदान करना	नेत्र द्वारा वस्तुओं के आकार गुणादि का ज्ञान, स्मृति एवं जाति स्मरता का ज्ञान कराना	प्रभा, प्रसन्नता, मेघा एवं मनोरथ सिद्धि कराना	उष्मा का नियमन, त्वचा पर अभ्यंग, लेपादि का पाचन, त्वचा पर प्रभा, छाया प्रकाशित करना

JAYPEE BROTHERS

पंचविध कफ-गुण, कर्म स्थान तालिका					
	क्लेदक	**श्लेषक**	**बोधक**	**तर्पक**	**अवलम्बक**
स्थान	आमाशय	सन्धि स्थान	जिह्वा	मस्तिष्क	हृदय
गुण कर्म	आहार को क्लिन्न करना अन्य कफ भेदों का तर्पण करना	सन्धियों में दृढ़ता एवं आर्द्रता प्रदान करना	समस्त रसों का ज्ञान कराना	ज्ञानेन्द्रियों का तर्पण करना	त्रिक स्थानों का अवलम्बन, हृदय को बल प्रदान करना

पित्त दोष वर्णन

पित्त के पञ्चविध भेदः-शरीर की चयापचय क्रिया के सम्पादन हेतु वात के समान सुश्रुत के पित्त के पांच भेदो का उल्लेख किया है:- 1. रञ्जक पित्त, 2. पाचक पित्त, 3. आलोचक पित्त, 4. साधक पित्त, 5. भ्राजक पित्त।

इन पांचों में आहार रस को वर्ण प्रदान करने वाला रंजक पित्त है। आहार को पचाने वाला पाचक पित्त है। आंखों में रहकर दृष्टि प्रदान करने वाला आलोचक पित्त है। हृदय को साधे रखने वाला साधक पित्त है तथा त्वचा में रहकर स्नेह (मालिश) आदि का (तेजोरसांना सर्वेषां) पाक करने वाला भ्राजक है।

रञ्जक पित्त

आहार के सार रस को रंजित कर रक्त में परिवर्तन करने वाला पित्त रंजक कहा गया है:-

''आमाशयाश्रयंपित्तं रंजकं रस रंजनात्''।(अ0हृ0सू0११/१९)
यत्तु यकृत् प्लीह्नोः पित्तं तस्मिन रंजकोऽग्निरितिसंज्ञा॥ (सू0सू0 २१/९)
स रसस्य रागकृदुक्तः॥

रंजक स्थानः-आमाशय यकृत एवं प्लीहा इसके विशेष स्थान है। आमाशय में रंजक पित्त के उपादान होने का वाग्भट ने सर्वप्रथम वर्णन किया है जिसे आज भी माना जाता है।

रंजन प्रक्रिया विशेषः-इस पित्त के स्थान के विषय में सुश्रुत ने यकृत एवं प्लीहा तथा वाग्भट ने आमाशय बताया है। यह मत भिन्नता नहीं है अपितु दोनों का ही मत मान्य है। इसका निर्णय आधुनिक विद्वानों के अनुसंधान से सिद्ध हुआ है अर्थात् गर्भ काल में गर्भस्थ शिशु का रक्त निर्माण यकृत-प्लीहा में होता है किन्तु जन्म के पश्चात् रक्त निर्माण अस्थियों में रहने वाला सरक्त मेद में होता है। इसमें भाग लेने वाले बाह्य तत्व रसधातु में घुले हुये उपस्थित रहते हैं इनका उत्पत्ति स्थान या संग्रह स्थान आमाशय एवं यकृत प्लीहा है।

यह लाल रंग लोहित कोशिकाओं में रहने वाले हीमोग्लोबिन के कारण होता है। इस हीमोग्लोबिन को विटामिन बी-12, लौह, प्रोटीन, आदि सहायक तत्व बनाते हैं। आहार से मिले हुए बी-12 को आन्तों द्वारा आचूंषण में एक द्रव्य सहायता करता है जो आमाशय की भित्ति कोशिकाओं से उत्पन्न होकर आहार में मिल जाता है। इसके बिना अवशोषण होना सम्भव नहीं है।

तेजो रसानां सर्वेषां मनुजानां यदुच्यते।
पित्तोष्मणः स रागेन रसो रक्तत्व मृच्छति॥ (च0चि0१५/२८)

समस्त रसों का अपना जो तेज है उस तेज तथा पित्त की उष्मा से रस रक्त में परिवर्तित होता है। यहाँ मनुजानां जो शब्द आया है पं० हरिदत्त शास्त्री जी की दृष्टि से ''मम्बुजानां'' होना

JAYPEE BROTHERS

उचित प्रतीत होता है क्योंकि समस्त मनुष्यों का न होकर समस्त जलीय रसों का तेज अर्थ का ही अभिप्राय सुश्रुत का है **''स खल्वाप्यो रसो यकृत प्लीहानो प्राप्य रागमुपैति''**। यह पाठ शुद्धि किये जाने का शास्त्री जी ने विद्वानों से अनुरोध भी किया था।

आमाशय में रस पर क्रिया होकर उसे रक्त में परिवर्तित करने की बात वाग्भट ने बताई है। जिसका समर्थन वर्तमान में अनुसंधानकर्ताओं ने स्वीकार किया है जिसको वैज्ञानिक कैसल ने Intrinsic factor के रुप में आविष्कृत किया है अर्थात् वाग्भट का **आमाशयाश्रयं पितं रजकं रस रञ्जनात्** पहला आविष्कार था।

पाचक पित्त

.....विशेषेण पक्वायामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपांन पचति, विवेचयति च दोष रस मूत्र पुरीषाणि..... (सु०सू० 21/9)

चारों प्रकार के अथवा छः प्रकार के आहार भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, चोष्य, पेह्य, लेह्य का पाक करने वाला पित्त पाचक पित्त है। यही भूताग्नियों एवं धात्वग्नियों का आहार है। यहाँ स्थित पाचक पित्त अन्य स्थानों में रहने वाले पित्त मेंदो को अपनी शक्ति से अनुग्रहीत करता है अर्थात् पोषण देता है।

पचत्यन्नं विभजते सारकिटौ पृथक तथा।
तत्रस्थमेवपित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम्॥
करोति बल दानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम्॥ (अ०हृ०सू० १२)

कर्मः-इसका प्रमुख कार्य आहार का पाक करना है। पाक के बाद उत्पन्न निष्ठा पाक एवं मल को पृथक करना तथा अन्य पित्त स्थानों में स्थित पित्त भेदों को कार्य करने के लिए शक्ति प्रदान कर अनुग्रहीत करना है। यह आयु एवं बल को भी बनाये रखता है। इसी से पाचक पित्त अन्य पित्त भेदों में श्रेष्ठ हैं। अन्य अग्नियाँ भी इसी पाचक अग्नि पर निर्भर है। इसकी वृद्धि होने पर अन्य अग्नियों की वृद्धि तथा पाचकाग्नि के क्षीण होने पर अन्य अग्नियाँ भी क्षीण हो जाती है अर्थात् प्रभावहीन रहती है।

पाचक पित्त (पाचक अग्नि) का विशेष महत्व

यद्यपि पित्त के समस्त भेद अपने-अपने कार्यों का यथा स्थान सम्पादन करते रहते हैं तथापि इनमें पाचक पित्त सभी को अनुप्राणित एवं अनुग्रहीत करने से प्रधान पोषक होता है। अतः पाचकाग्नि का कार्य समस्त शरीर की अग्नियों में प्रधान बताया गया है क्योंकि अन्य अग्नियाँ पाचकाग्नि पर निर्भर रहती है।

आयु, वर्ण, बल, निरोगता, उत्साह, पोषण, शारीरिक प्रभा, ओज, तेज, प्राण, जीवन शक्ति सभी पाचकाग्नि क्रिया पर निर्भर करते हैं। इसकी समुचित क्रियाशीलता से समस्त कार्य होते हैं। इस अग्नि के क्षीण या शान्त होने पर, विकृत होने पर, उत्पन्न विकार एवं समुचित पोषण नहीं होने से मृत्यु भी हो जाती है। अतः यही स्वस्थ जीवन का मूल होने से इसका विशेष महत्व बताया गया है जिनका स्रोतों कें साथ वर्णन किया गया है।

पाचकाग्नि के शान्त होने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यदि पाचक पित स्वस्थ है, समभाव में स्थित है तब मनुष्य नीरोग एवं चिरायु होता है। उसके विकृत होते ही मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। इसलिए उसे जीवन का मूल कहा जाता है।

JAYPEE BROTHERS

शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयः
रोगी स्याद्विकृते मूलं अग्निस्तस्मान्निरुच्यते । (च०चि० १५)

आलोचक पित्त

जो पित्त दृष्टि में रहकर रूपों को ग्रहण कराता है वह आलोचक पित्त कहा जाता है। इसी के कारण हम देख सकते हैं। भेल संहिता में इसके दो भेद किए हैं-आंखो में रहकर रूप का ज्ञान कराने वाला चक्षुवैशेषिक है तथा दूसरा बुद्धि वैशेषिक आलोचक पित्त है जो वस्तु की स्मृति एवं पहचान कराता है।

स्थानः-चक्षु (नेत्र) ही आलोचक पित्त का स्थान है। ऊपर जो दो भेद बताये हैं इसमें चक्षु वैशेषिक आलोचक का स्थान नेत्र एवं बुद्धि वैशेषिक आलोचक का स्थान भ्रू मध्य अर्थात् श्रृंगाटक मर्म बताया गया है।

कर्मः-नेत्रों द्वारा वस्तुओं के स्वरूप गुणादि का ज्ञान कराना एवं स्मृति में आये ज्ञान द्वारा उस की पहचान कराना है अर्थात् वस्तु का सविकल्पक ज्ञान कराता है। बुद्धि वैशेषिक आलोचक द्वारा पूर्व में देखे, सुने एवं खाये गये पदार्थ का ज्ञान एवं जाति स्मरता (पूर्व जन्म का) ज्ञान भी इसी के द्वारा होता है।

साधक पित्त

जो पित्त हृदय में रहकर इच्छित मनोरथ सिद्ध कराता है वह साधक पित्त है। चेतना एवं मन का स्थान भी हृदय बताया गया है। अतः मानसिक कार्य साधक पित्त से ही सम्पन्न होते हैं। अतः इसी के द्वारा संकल्प, विचार, ध्येय आदि मन के कार्य सिद्ध करता है।

हृदि तिष्ठति यत् शुद्धं रक्तं ईषत् सपीतकम्।
ओजः शरीरे संख्यातस्तन्नाशाद् ना विनश्यति॥ (च०सू०७/७४)
यत्पित्तं हृदयसंस्थितं तस्मिन साधकोऽग्नि रिति संज्ञा॥ (सू०सू०२१)
बुद्धि मेंधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थ साधनात्। साधकं हृदयगतंपित्तम्॥
(अ०हृ०सू० १२/१४)

वाग्भट में-इसके लक्षण सहित हृदय में स्थित साधक पित्त का वर्णन किया है अर्थात् हृदय में रहकर इच्छित मनोरथों को प्राप्त कराने वाला पित्त साधक पित्तहै।

स्थानः-इसका प्रमुख स्थान हृदय है।

कर्मः-प्रभा प्रसादो मेधा च पित्त कर्माविकारजम्॥ च०सू० 18/50
शरीर की कान्ति, प्रसन्नता, मेधा आदि प्राकृत पित्त के कर्म बताये गये हैं। साधक पित्त के समस्त कार्य मन के ही कार्य है अर्थात् स्मृति एवं धृति से उत्पन्न होने वाली बुद्धि, मेधा, एवं अभिमान ये साधक पित्त के कर्म है। विषम अवस्था में भय, क्रोध, लोभ, मोहादि की उत्पत्ति होती है।

भ्राजक पित्त

यत् त्वचि पित्तं तस्मिन भ्राजकोऽग्निरितिसंज्ञा। (सुश्रुत सू० २१/९)
त्वकस्थं भ्राजकं भ्राजनात्वचः॥ (वाग्भट्ट सू० १२/१४)

JAYPEE BROTHERS

सम्पूर्ण शरीर की त्वचा में रहने वाला पित्त भ्राजक पित्त कहलाता है।

स्थानः-सम्पूर्ण शरीर की त्वचा।

कार्यः-त्वचा पर मर्दन, लेपन आदि कर्मों में प्रयुक्त द्रव्यों का पाचन करना, विशेषकर उष्मा का नियमन, शरीर में उष्मा की वृद्धि हो जाने पर नियमन केन्द्र अधिक क्रियाशील हो जाता है तथा त्वचा द्वारा अधिक उष्मा निकलने लगती है। तीव्र ज्वर होने पर त्वचा इसी कारण लाल हो जाती है।

उष्मा का निष्कासन विकिरण क्रिया पर आधारित होता है। यह त्वचा अवयव की क्रिया में वर्णन किया गया है- 1. छाया एवं प्रभा भी इसी से उत्पन्न होती है। 2. प्रयुक्त तैलादि स्नेह का पाचन शोषण इसी से होता है जिसे आधुनिकों ने मैलानिन कहा है।

छाया वर्ण को मलिन करती है तथा प्रभा व्यक्ति के वर्ण को प्रकाशित करती है। छाया निकट से एवं प्रभा दूर से प्रकाशित होती है।

वर्णमाक्रामति च्छाया भास्तु वर्ण प्रकाशिनी।
आसन्ना लक्ष्यते छाया भाः प्रकृष्टा प्रकाशते॥ (च०इ०७/१६)

भौतिक दृष्टि से यह छाया पांच प्रकार की होती हैः-नाभसी, वायवीं, आग्नेयी, जलीय एवं पार्थिव। इसी प्रकार प्रभा सात प्रकार की बताई गई है-रक्त पीत श्वेत, श्याम, हरित, पाण्डु एवं असित।

रक्ता पीता सिता श्यावा हरिता पाण्डुराऽसिता। (च०इ०)
प्रभोक्ता तेजसी सर्वा सा तु सप्तविधाः स्मृता॥ (अ०हृ०शा०)

अग्नि एवं पित्त में समानता एवं विभेदक लक्षण

आयुर्वेद ग्रन्थों में अग्नि एवं पित्त को एक ही माना है। शरीर की सम्पूर्ण अग्नियों को पित्त के अवान्तर रुप स्वीकार किये गये हैं। सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि पित्त के अतिरिक्त शरीर में कहीं अग्नि नहीं है। पित्त उष्मा का स्वरूप है इसके पांच भेद पाचक, भ्राजक, आलोचक, साधक एवं रञ्जक द्वारा शरीर के पाचन, दहन, दर्शन आदि अग्नि या तेज के अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं।

आधुनिक दृष्टि से शरीर में पाचन, उष्मा एवं विभिन्न रासायनिक परिवर्तन पित्त के भेदों द्वारा ही होते हैं। यथा-1. जठराग्नि, उदर से आन्त्र तक, 2. रञ्जकाग्नि आमाशय, यकृत एवं प्लीहा में, 3. साधकाग्नि हृदय में, 4. आलोचकाग्नि नेत्रों में तथा 5. भ्राजकाग्नि त्वचा में रहते हुए इन स्थानों पर होने वाले सम्पूर्ण कार्य निरन्तर करती रहती है।

चरक में मरीचि कहते हैं कि :- अग्निरेव शरीरे पितान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति। तद्यथा पक्तिंमक्तिंदर्शनमदर्शनं मात्रामात्रत्वमूष्णः प्रकृतिविकृति वर्णौ शौर्य, भयं, क्रोधं, हर्षं, मोहं प्रसादमित्यैवमादीनि च अपराणि द्वन्द्वानीति। सू० 12/17

पित्त के भेदों के बताये कर्मो के अतिरिक्त शौर्य, भय, क्रोध, हर्ष, मोह प्रसाद (खुसी) आदि जोड़े जैसे सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष आदि कार्य भी पित्त रूपा अग्नि से ही होते हैं।

न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरूपलभ्यते। सुश्रुत सू०६

JAYPEE BROTHERS

संहिता एवं टीकाकारों की दृष्टि से पित्त एवं अग्नि को भिन्न होते हुए भी अग्नि एवं पित्त के पाचकत्व आदि कर्मों को उनका धर्म बताया है। आगे यह भी कहा है कि अग्नि पित्त के अन्तर्गत रहकर प्राकृत या विकृत स्थिति में रहता हुआ सम्यक् पचन आदि शुभ एवं असम्यक पाक आदि अशुभकर्म करता है। अतः पित्त अपने पाचक स्वरूप उष्मा गुण से अग्नि का आश्रय है तथा अग्नि पाक स्वरूप पित्त की आश्रित है।

दोनों पृथक होते हुए भी कर्म साम्य होने से एक भी है। दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतः कार्य की दृष्टि से एन्जाइम आदि पाचक रस इसी के अन्तर्गत आते हैं। 13 प्रकार की अग्नियों का मूल स्रोत अग्नि महाभूत है तथा पित्त एवं उष्मा तथा पाचक रस उसी के विविध रूप हैं। अतः उत्पत्ति की दृष्टि से एक ही है किन्तु स्वरूप एवं क्रियाकारिता की दृष्टि से पृथक भी है।

कफ दोष वर्णन

कफ के पञ्चविध भेद

वात एवं पित्त की तरह वाग्भट ने कफ के पांच भेदों को स्पष्ट किया है। यद्यपि लक्षणों की दृष्टि से तो चरक सुश्रुतादि ने श्लेष्मा के भेदों का संकेत किया है किन्तु पृथक नाम वाग्भट ने ही बताये हैं। शरीर को संश्लेषित करने के कारण इसे श्लेष्मा कहते हैं। बल का आधार होने से एक नाम बलास भी है।

कफ के भेदः-1. क्लेदक कफ, 2. बोधक कफ, 3. तर्पक, 4. श्लेषक, 5. अवलम्बक।

क्लेदक कफ

चरक ने आहार के क्लिन्न होकर संधात करने तथा स्निग्ध होने का उल्लेख तो किया है किन्तु क्लेदक का नाम नहीं दिया है।

अन्नमादान कर्मा तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति।
तद्द्रवैर्भिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतां गतम्॥ (च०चि० १५/५)

जो कफ आमाशय में आये हुए चतुर्विध आहार के संघात को तोड़कर क्लिन्न करता है वह क्लेदक कफ है।

आमाशयः चतुर्विधस्याहारस्याधारः। स च तत्रोदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्नसंधातः सुखजरश्च भवति॥ (सु०सू० २१)
यस्त्वामाशयसंस्थितः क्लेदकः। सोऽन्न संघातक्लेदनात्॥ (अ०हृ०सू० १२)

स्थानः-इसका प्रमुख स्थान आमाशय है। आमाशय की श्लेष्मिक कला से स्रवित होने वाला म्यूसिन नामक स्राव ही क्लेदक स्वरूप है।

कर्मः-यह आमाशय में आये हुए चतुर्विध आहार को तोड़कर क्लिन्न (गीला) करता है अर्थात् उसे पाचन के योग्य बनाता है। यही कफ अन्य स्थान में रहने वाले कफ भेदों को उदक कर्म द्वारा अनुग्रहीत या पोषित करता रहता है तथा आमाशय एवं आंत्र में अम्लता की वृद्धि नहीं होने देता है।

JAYPEE BROTHERS

श्लेषक कफ

संधि संश्लेषात् श्लेषकः (अ0हृ0सू0१२/१७)
सर्व सन्धिसंश्लेषात् सर्वसन्ध्यनुग्रहं करोति। (सू0सू0२१/१३)

जो कफ सन्धियों में रहकर, सन्धियों का संश्लेषण करता हैं वह श्लेषक कफ होता है।

स्थानः-इसका स्थान समस्त शरीर की सन्धियाँ हैं। चतुर्थकला का नाम श्लेष्मधरा बताया गया है। यह सभी प्राणियों की समस्त सन्धियों में रहती है। इसी श्लेष्मधरा कला द्वारा उत्पन्न स्नेहित स्राव ही श्लेषक कफ रूप है।

कर्मः-सन्धयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणातथा। (सु0शा0४/१३)

सन्धियों में रहने वाला कफ उन्हें दृढ़ता प्रदान करता है, परस्पर मिलाये रखने में सहायक है। उन्हें स्निग्धता, श्लक्ष्णता एवं पिच्छिलता प्रदान करता है। समस्त सन्धि भाग स्नायु एवं पेशियों से बंधे रहते हैं जिन्हें श्लेषक कफ स्नेह प्रदान करता है।

बोधक कफ

रसबोधनात् बोधको रसनास्थायी (अ0हृ0सू0१२/१७)

जिह्वा में रहने वाले एवं रस ज्ञान कराने वाले कफ को बोधक कहा है।

स्थानः-इसका प्रधान स्थान जिह्वा मूल एवं कण्ठ है। **'जिह्वा मूल कण्ठस्थो'।** (सु०सू० 21/13)

कर्मः-यह कफ अपने मूल स्थान से अन्य कफ भेदों का स्नेहन एवं तर्पण करता है, अर्थात् आहार के छः रसों का जिह्वा से होने वाला ज्ञान बोधक कफ से होता है। यह बोधक कफ मुख की तीन लार ग्रन्थियों का स्राव बताया गया है। इस स्राव में स्निग्धांश एवं पाचकांश रहते हैं। भोजन के मुख में आते ही जिह्वा के रसांकुर प्रभावित होकर (मधुर, अम्ल एवं लवणादि) रसों का ज्ञान कराते हैं। रस बोध कराने से ही रस बोधक कफ कहा गया है। बोधक प्रक्रिया का जिह्वा इन्द्रिय की क्रिया के वर्णन में आगे पढ़ें।

तर्पक कफ

शिरः संस्थोऽक्षतर्पणात्तर्पकः। (अ0हृ0सू0 १२/१७)

शिर में स्थित होकर इन्द्रियों के मूल स्थानों का तर्पण करने वाला कफ तर्पक कफ कहलाता है।

स्थानः-इसका स्थान शिर, ग्रीवा एवं सुषुम्ना है।

कर्मः-इन्द्रियों के मूल स्थान में रहकर ज्ञानेन्द्रियों के मूल भाग का स्नेहन करता है, उनका तर्पण करता है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के मूल केन्द्र जो मस्तिष्क में है उनको पोषित करता है। सुषुम्ना नाड़ियों का तर्पण करता है अर्थात् मस्तिष्क में रहने वाले Cerebrospinal fluid के समान ही तरल है। क्षमा, धृति, धारण, बुद्धिः एवं निर्लोभता आदि कर्म इसके शुद्ध रहने पर ही होते हैं।

अवलंबक कफ

हृदय में रहकर उसे बल प्रदान करने या हृदय का अवंलम्बन करने से इसे अवलंबक कफ कहते है।

JAYPEE BROTHERS

or detailed information on physiology books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on physiology books, visit our w

क्रिया शारीर
(शरीर क्रिया विज्ञान)
Human Physiology

पुस्तक की विषेशता

- प्रश्न-पत्र प्रथम एवं द्वितीय के आधुनिक विषयों का भी वर्णन किया है।
- सी० सी० आई० एम० के पाठ्यक्रमानुसार लेखन।
- कुछ अवयवों का आधुनिक परिचय।
- पुस्तक के विषयों की अकारादि तालिका।
- विद्यार्थियों की सुविधा हेतु सरल भाषा में वर्णन।

आचार्य बैद्य ताराचन्द शर्मा एम० डी० आयुर्वेद, स्व. पं. रामदत्त जी शर्मा के सुपुत्र, मूल निवासी बिसाऊ, झुन्झुनू (राजस्थान) ने अपना आयुर्वेद अध्ययन वैद्य मुरारी मिश्र जी एवं वैद्य रामकृष्ण शर्मा जी दण्ड के सानिध्य में कर्माभ्यास करते हुए आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त की, १९६८ से १९७८ तक जयपुर एवं हरियाणा के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कराते हुए पदार्थ विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान, आयुर्वेद का इतिहास एवं द्रव्यगुण विज्ञान आदि विषयों पर पुस्तकों का लेखन किया। १९८० में पंजाब विश्वविद्यालय पटियाला से एम.डी. आयुर्वेद की उपाधि प्राप्त कर दिल्ली के मूलचन्द हॉस्पिटल में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी के पद पर पं. हरिदत्त जी शास्त्री एवं श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी के सानिध्य में आयुर्वेद विश्वकोश तैयार किया जिसका एक भाग "पन्चकर्म चिकित्सा विज्ञान" चौखम्बा से प्रकाशित हो चुका है। १९९५ में वैद्य शिवकुमार जी मिश्र, पूर्व सलाहकार आयुर्वेद, भारत सरकार के निर्देशन में संकलन कार्य पूर्ण कर मूलचन्द से निवृत्ति लेकर १९९५ से मॉडल आई. हॉस्पिटल, लाजपतनगर में अधीक्षक आयुर्वेद विभाग के पद पर कार्य कर रहे हैं। साथ ही स्वतंत्र चिकित्सा भी कर रहे हैं।

आपके लेख लगभग २०० पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा अनेक सेमीनारों में शोधपत्र वाचन भी किये हैं। आप दिल्ली के जाने-माने सिद्धहस्त नाड़ी चिकित्सक हैं। आपकी ३५ पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने केन्द्रीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान की पाँच पुस्तकों : वैद्य मनोरमा, अभिनव चिन्तामणि, बृहत योग तरंगिणी, रसमुन्जूषा, वैद्यक संग्रह का हिन्दी अनुवाद किया है। विगत ४० वर्षों से आप आयुर्वेद छात्रों में लेखक के रूप में प्रसिद्ध व्यक्तित्व के धनी हैं। आपको अनेक संस्थानों ने अनेक मानद उपाधियाँ : शताब्दी महर्षि, राजस्थान श्री, आयुर्वेद विश्व गौरव, आयुर्वेद महाप्रयाण प्रदान की है। वर्तमान में आप राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली के राष्ट्रीय गुरु एवं महासम्मेलन के मंत्री है। आप दिल्ली के जाने-माने नाड़ी चिकित्सक हैं। राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा आपको लाईफ टाईम अचीवमेंट अवार्ड दिया गया है। अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, दिल्ली द्वारा टीचर्स-डे पर सम्मान-पत्र दिया गया है एवं दिल्ली सरकार द्वारा "**वरिष्ठ नागरिक सम्मान**" से सम्मानित किया गया है।

Printed in India

Available at all medical bookstores
or buy online at www.jaypeebrothers.com



JAYPEE BROTHERS
Medical Publishers (P) Ltd.
EMCA House, 23/23-B, Ansari Road,
Daryaganj, New Delhi - 110 002, INDIA
www.jaypeebrothers.com

Join us on facebook.com/JaypeeMedicalPublishers

Shelvinf Recommendation
PHYSIOLOGY

